

पुखराज डी. जैन और अन्य

बनाम

जी. गोपालकृष्णा

अप्रैल 16,2004

[एस. राजेंद्र बाबू और जी. पी. माथुर, न्यायाधिपतिगण]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908; धारायें 10, 47, 48 और 151 / परिसीमा अधिनियम, 1963; अनुच्छेद 54/विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963; धारा 16 सी:

संपत्ति बेचने के लिए समझौता - प्रथम पक्ष खरीदार द्वारा आंशिक प्रतिफल का भुगतान-मालिक द्वारा आंशिक कब्जे का हस्तांतरण - अनुबंध को रद्द करते हुये प्रथम पक्ष ने मालिक के खिलाफ अग्रिम वसूली के लिये मुकदमा दायर किया - दावे को एक विक्रय विलेख के विनिर्दिष्ट पालना में परिवर्तित करने के लिये प्रार्थना - पत्र - परिसीमा के आधार पर विचारण अदालत द्वारा खारिज कर दिया गया - मालिक ने संपत्ति को दूसरे पक्ष को बेच दिया और उसके कब्जे को हस्तांतरित कर दिया - राशि की वसूली के लिए निचली अदालत द्वारा आदेशित मुकदमा - एक पुनरीक्षण याचिका दायर करके स्वयं निर्णय लेनदार द्वारा चुनौती दी गई - उच्च न्यायालय द्वारा इसे असामान्य संशोधन के रूप में देखते हुए स्वीकार किया गया -नए मालिकों द्वारा कब्जा और वास्तविक लाभ का दावा करते हुए बेदखली के लिए मुकदमा-मूल मालिक के खिलाफ पहले पक्ष द्वारा दायर विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक और मुकदमा और न्यायिक आधार पर धारा 10 सी. पी. सी. के तहत मुकदमे पर रोक लगाने के लिए एक आवेदन भी दायर किया गया-निचली अदालत ने मुकदमे को परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण खारिज कर दिया-उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार की गई अपील ने

मामले को स्थगन आवेदन के निपटारे के लिए निचली अदालत को भेज दिया-अपील पर अभिनिर्धारित : अदालत के लिए यह खुला है कि वह उस मुकदमे पर जल्द फैसला करे जो विरोधी पक्ष को परेशान करने के अप्रत्यक्ष उद्देश्य से शुरू किया गया था-उच्च न्यायालय के निष्कर्ष कानून में पूरी तरह से गलत हैं क्योंकि धारा 10 सी. पी. सी. केवल प्रक्रिया का नियम लागू करती है और उसके उल्लंघन में पारित एक डिक्री अमान्य नहीं है-चूंकि मूल मालिक बिक्री विलेख को निष्पादित करने के लिए तैयार नहीं थे और विचारण न्यायालय ने विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमे को खारिज कर दिया था क्योंकि परिसीमा द्वारा वर्जित था, इसलिए पहले पक्ष को पालना से इनकार करने का नोटिस है-परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 54 आकर्षित किया गया -क्योंकि प्रथम पक्ष स्वयं समझौते के अपने हिस्से का पालन करने के लिए तैयार नहीं था, उसके पक्ष में विनिर्दिष्ट पालना की कोई डिक्री पारित नहीं की जा सकती थी-इसलिए, विचारण न्यायालय ने सही माना कि मुकदमा बनाए रखने योग्य नहीं था क्योंकि परिसीमा द्वारा वर्जित था।

अपीलार्थीगण सं 6 से 10, मूल मालिकों ने, प्रतिवादी के पक्ष में वाद संपत्ति के लिए एक विक्रय विलेख को निष्पादित किया और उसके प्रतिफल के रूप में अग्रिम रूप से निश्चित राशि प्राप्त की और उसके बदले में संपत्ति के भूतल के कब्जे को प्रतिवादी को सौंप दिया। प्रतिवादी ने अनुबंध को रद्द कर दिया और अग्रिम की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। काफी समय बीतने के बाद उन्होंने विक्रय विलेख की विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमे को एक में बदलने के लिए एक आवेदन भी दायर किया। विचारण कोर्ट ने इस आधार पर आवेदन को खारिज कर दिया कि विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित हो गया था। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया। निचली अदालत ने अग्रिम की वसूली के लिए मुकदमे का फैसला सुनाया। प्रतिवादी ने एक पुनरीक्षण याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने

पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करते हुए इसे असामान्य पुनरीक्षण बताते हुए मुकदमे को खारिज कर दिया।

इस बीच मूल मालिकों ने संपत्ति को अपीलार्थी संख्या 1 से 5 को बेच दिया। संपत्ति के नए मालिकों ने प्रतिवादी के विरुद्ध बेदखली और अंतरलाभ चाहते हुये बेदखली याचिका दायर की। हालांकि, प्रतिवादी ने पहले के समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए एक और मुकदमा भी दायर किया था और पूर्वन्याय के आधार पर मुकदमे पर स्थगन लगाने के लिए एक आवेदन भी दायर किया । विचारण न्यायालय ने मुकदमे को परिसीमा द्वारा वर्जित बताते हुए खारिज कर दिया। व्यथित होकर, प्रतिवादी ने एक अपील को प्रस्तुत किया जिसे उच्च न्यायालय द्वारा मुकदमे पर रोक लगाने के लिए आवेदन के निपटारे के लिए मामले को निचली अदालत को भेजते हुये स्वीकार किया गया इसलिए वर्तमान अपील।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

1.1 . उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण विधि में पूरी तरह से गलत है और अपास्त किया जाता है। दावे के विचारण कार्यवाही सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार होनी चाहिए। धारा 10 सी. पी. सी. का उद्देश्य समवर्ती क्षेत्राधिकार के न्यायालयों को एक ही मामले के संबंध में दो समानांतर मुकदमों की एक साथ सुनवाई करने से रोकना है। यह धारा केवल प्रक्रिया के नियम को अधिनियमित करती है और इसके उल्लंघन में पारित डिग्री अमान्य नहीं है। यह किसी वादी के लिए नहीं है कि वह न्यायालय को यह निर्देश दे कि कार्यवाही कैसे की जानी चाहिए, यह न्यायालय को तय करना है कि मामले के शीघ्र निपटारे के लिए सबसे अच्छा तरीका क्या होगा। किसी मामले में कार्यवाही की बहुलता और पक्षों के उत्पीड़न से बचने के लिए बाद के मुकदमे की कार्यवाही पर रोक लगाना आवश्यक हो सकता है। हालांकि,

जहां बाद में मुकदमा दायर किया गया है, उस पर बिना साक्ष्य लिए विशुद्ध रूप से कानूनी बिंदुओं पर निर्णय लिया जा सकता है, न्यायालय के लिए प्रासंगिक मुद्दों पर निर्णय लेने के लिए हमेशा खुला रहता है और मुकदमे को लंबित नहीं रखने के लिए जो एक अप्रत्यक्ष उद्देश्य के साथ शुरू किया गया है और दूसरे पक्ष को परेशान करने के लिए है। [329 - एच; 330-सी-डीजे 326

1.2 . परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 के तहत 3 साल की सीमा की पालना के लिए निर्धारित तिथि से गणना की जानी चाहिए, या यदि, ऐसी कोई तारीख तय नहीं है, जब वादी को पता चलता है कि पालना से इनकार कर दिया गया है। अपीलार्थी सं. 6 से 10 (संपत्ति के मूल मालिकों) ने संशोधन के लिए पहले के मुकदमे में प्रतिवादी द्वारा दायर आवेदन का विरोध किया था जिसमें सीमा के आधार पर समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन में राहत की मांग की गई थी और उनकी याचिका स्वीकार कर ली गई थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वर्तमान मुकदमा दायर करने से बहुत पहले प्रतिवादी को इस तथ्य का पता था कि मूल मालिक उसके पक्ष में बिक्री विलेख को निष्पादित करने के लिए तैयार नहीं थे। मूल मालिक (अपीलार्थी संख्या 6 से 10) ने दिनांक 18/4/1985 को अपीलकर्ता संख्या 1 से 5 के पक्ष में विवाद में संपत्ति बेच दी, क्योंकि संशोधन आवेदन को निचली अदालत द्वारा इस निष्कर्ष पर खारिज कर दिया था कि विनिर्दिष्ट पालना के लिए राहत परिसीमा द्वारा वर्जित हो गई थी। इन तथ्यों पर कोई अन्य निष्कर्ष संभव नहीं था और निचली अदालत यह अभिनिर्धारित करने में पूरी तरह से उचित थी कि मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित था। [ 331 - सी-डी-ई]

1.3 . यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि विनिर्दिष्ट पालना का न्यायसंगत उपचार उन अभिवचनों के आधार पर नहीं किया जा सकता है जिनमें सी. पी. सी. के प्रपत्र 47 और 48 के संदर्भ में अनुबंध के अपने हिस्से का पालन करने के

लिए वादी की तैयारी और इच्छा के दावे शामिल नहीं हैं। वर्तमान मामले में, प्रतिवादी ने स्वयं अनुबंध को रद्द करते हुए एक कानूनी नोटिस भेजा और उसके बाद अपने द्वारा भुगतान किए गए अग्रिम की वापसी का दावा करते हुए एक मुकदमा दायर किया। वास्तव में राशि की वसूली के लिए मुकदमा निचली अदालत द्वारा तय किया गया था, लेकिन उन्होंने खुद डिक्री के खिलाफ एक पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा वादपत्र की अस्वीकृति का आदेश पारित किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि प्रतिवादी अनुबंध के अपने हिस्से का पालन करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं था और विनिर्दिष्ट पालना अधिनियम की धारा 16 के अधिदेश को देखते हुए विनिर्दिष्ट पालना के लिए उसके पक्ष में कोई डिक्री पारित नहीं की जा सकती थी। निचली अदालत ने सही फैसला सुनाया कि मुकदमा प्रतिवादी द्वारा दायर किया गया वाद विचारणीय नहीं था। [ 331 - एच; 332-ए-बी-सी]

2. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मुकदमे को खारिज करने के लिये विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री पूरी तरह से सही थी और उच्च न्यायालय ने मामले के इन पहलुओं पर ध्यान नहीं देने और प्रतिवादी की ओर से उठाये गये विवाद को स्वीकार करने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की, जो प्रक्रिया के मामले से संबंधित है और सार से नहीं, कि मुकदमे पर रोक लगाने के लिए सी. पी. सी. की धारा 10 के तहत उसके द्वारा दायर आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया गया था। [ 332 - डी]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार : सिविल अपील संख्या 2082/1998

(आर. एफ. ए. सं. 635/1996 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 17.3.97 से।)

पी.आर. रमेश, अपीलार्थीगण के लिये।

पी.सी. विद्या सागर, प्रतिवादीग के लिये।

न्यायालय का निर्णय जी. पी. माथुर, न्यायाधिपति द्वारा दिया गया था।

1. विशेष अनुमति द्वारा यह अपील प्रतिवादियो द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 17/3/1997 के विरुद्ध दायर की गई हे, जिसके द्वारा वादी द्वारा की गई नियमित प्रथम अपील को स्वीकार किया गया था और मामले को कुछ निश्चित निर्देशो के साथ निचली अदालत में भेज दिया गया।

2. इसमें शामिल विवाद को समझने के लिए उन तथ्यों को बाहर निकालना आवश्यक है, जो कि बहुत कम शामिल हैं।

(i) अपीलार्थी सं 6 से 10 श्री एम. जी. दयाल के बेटे और बेटियाँ हैं और वे वाद संपत्ति (जयनगर, बेंगलोर में आवासीय भवन) के मालिक थे। उन्होंने 5/12/1974 को डॉ. जी; गोपालकृष्ण (वादी/प्रतिवादी संख्या 1) के पक्ष में वाद की संपत्ति को रूपये 1,42,500 रूपये के प्रतिफल पर बेचने के लिये एक समझौता किया और अग्रिम राशि के रूप में रूपये 42,500/- प्राप्त किये। प्रतिवादी नं. 1 को संपत्ति के भूतल पर भी कब्जा दे दिया गया।

(ii) प्रतिवादी संख्या 1 ने अनुबंध को रद्द करने के लिए एक कानूनी नोटिस जारी किया और उसके द्वारा भुगतान की गई अग्रिम राशि की वापसी का दावा किया। 7.11.1977 को उन्होंने अपीलकर्ता संख्या 6 से 10 (संपत्ति के मालिक) के विरुद्ध ओएस नंबर 801/1977 उस राशि का दावा करते हुये जिसका भुगतान अग्रिम रूप से किया गया था, प्रस्तुत की (बाद में ओएस नंबर 1891/1980 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया) काफी समय बाद प्रतिवादी नं. 1 ने वाद को एक बिक्री के समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के वाद में परिवर्तित करने की अनुमति के लिये संशोधन प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया। इस प्रार्थना पत्र को विचारण न्यायालय ने 3/12/1984 को खारिज कर

दिया इस आधार पर कि विनिर्दिष्ट पालना के लिये मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित हो गया था। उक्त आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत पुनरीक्षण याचिका सीआरपी संख्या 702/1985 भी, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा 29/5/1985 को प्रवेश के स्तर पर खारिज कर दिया गया था।

(3) अपीलकर्ता संख्या 1 से 5 (पुखराज डी. जैन और उसके चार पुत्र) ने विवाद में संपत्ति मूल मालिको, अर्थात् प्रतिवादी संख्या 6 से 10 से दिनांक 18/4/1985 से रुपये 3,60,000 में खरीदी और उन्हें भवन की प्रथम मंजिल का कब्जा दिया गया।

(iv) प्रत्यर्थी सं. 1 ने 26/6/1985 को एक संशोधन प्रार्थना पत्र दायर किया गया, जिसमें ओएस नंबर 801/1977 में वाद में संशोधन की मांग की गई और कानूनी सूचना की लागत के लिये रुपये 125/- की अतिरिक्त राशि का दावा किया गया। संशोधन आवेदन को स्वीकार किया गया और प्रतिवादी संख्या 1 को बढे हुये दावे को देखते हुये 12.50 रुपये की अतिरिक्त अदालती फीस का भुगतान करना पडा। हालांकि उपरोक्त राशि का भुगतान करने के बजाय प्रतिवादी नं 1 ने एक ज्ञापन दायर किया जिसमें कहा गया था कि वह अदालत की फीस का भुगतान करने की स्थिति में नहीं था और इस तरह से वाद पत्र पर कम स्टॉप लगने के कारण उसे खारिज किया जा सकता है। निचली अदालत ने 24.7.1985 को राशि की वसूली के लिए मुकदमे का फैसला सुनाया।

(v) हालांकि, प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा प्रस्तुत मुकदमे का फैसला सुनाया गया था, फिर भी उसने अपनेपक्ष में पारित फैसले और डिक्री को चुनौती देते हुये सीआरपी नंबर 3797/1985 के रूप में एक पुनरीक्षण याचिका दायर की। हालांकि उच्च न्यायालय ने पाया कि यह एक वादी द्वारा दायर एक असामान्य पुनरीक्षण था, फिर भी

18/2/1987 को इसकी अनुमति दे दी गई और मुकदमे के फैसले और डिक्री को अपास्त कर दिया गया और वाद को खारिज कर दिया गया।

(vi) अपीलकर्ता नं. 1 से 5 ने दिनांक 18/4/1985 को उनके पक्ष में विक्रय विलेख के निष्पादन के बाद; एक वाद ओ एस नंबर 4631/1986 प्रतिवादी संख्या 1 की बेदखली विवादग्रस्त भवन के भूतल से किये जाने और मध्यवर्ती लाभ चाहने के लिये प्रस्तुत किया।

(vii) 2.4.1988 को प्रतिवादी संख्या 1 ने अपीलकर्ता संख्या 6 से 10 के विरुद्ध एक अन्य वाद ओएस नं. 1629/1988 सिटी सिविल जज, बेंगलोर के न्यायालय में समझौता दिनांक 5/12/1974 की विनिर्दिष्ट पालना के लिये प्रस्तुत किया। इस वाद में परिसीमा प्रतिबंध से संबंधित तनकी संख्या 3 तथा वाद की पोषणीयता से संबंधित तनकी संख्या 4 तय किये गये थे। प्रतिवादी नंबर 1 ने सीपीसी की धारा 10 के तहत एक आवेदन भी दायर किया और अपने स्वयं के वाद ओएस संख्या 1629/1988 पर स्थगन लगाने की मांग की इस आधार पर कि इसमें शामिल मुद्दे सीधे तौर पर और काफी हद तक पहले से प्रस्तुत ओएस संख्या 4631/1986 के मुकदमे में भी शामिल थे, जो अपीलकर्ता संख्या 1 से 5 द्वारा घर के भूतल से बेदखल करने और कब्जे के लिये दायर किया गया था।

(viii) अतिरिक्त सिटी सिविल जज, बेंगलोर ने ओएस नं. 1629 / 1988 को 30.9.1995 को तनकी संख्या 3 और 4 पर निर्णय लेने के बाद खारिज कर दिया, जिसमें उन्होंने माना कि मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित था और वह चलने योग्य नहीं था।

(ix) प्रत्यर्थी सं. 1 ने अतिरिक्त सिटी सिविल जज के निर्णय और डिक्री दिनांक 30/9/1995 के खिलाफ उच्च न्यायालय में आरएफए संख्या 635 को प्रस्तुत किया।



उच्च न्यायालय ने अपील को स्वीकार किया और अतिरिक्त सिटी सिविल जज के आदेश और डिक्री को खारिज कर दिया और प्रकरण को विचारण न्यायालय को प्रतिवादी संख्या 1 (वादी) के द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 10 सीपीसी में वाद पर स्थगन के लिये का निस्तारण करने के लिये प्रेषित कर दिया। यह निर्णय और आदेश ही वर्तमान अपील में चुनौती का विषय है।

(x) प्रतिवादी संख्या 1 और कब्जे को बेदखल करने का मुकदमा (ओएस नं.4631/1986) अपीलार्थी सं. 1 से 5 के द्वारा दायर विचारण न्यायालय द्वारा 20/12/1997 को डिक्री किया गया था। प्रतिवादी संख्या 1 के द्वारा उपरोक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत आरएफए नं. 171/1998 उच्च न्यायालय द्वारा 2.7.2001 को खारिज कर दिया गया। यह घटनाक्रम इस न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका दायर करने के बाद हुआ है।

3. उच्च न्यायालय में प्रतिवादी नं. 1 द्वारा की गई अपील में एकमात्र आधार यह था कि उसने 21/10/1993 को सीपीसी की धारा 10 के तहत एक आवेदन दायर किया था और अपने मुकदमे (ओएस संख्या 1629/1988) पर रोक लगाने के लिए मांग की थी, इसलिए निचली अदालत पर यह अनिवार्य था कि वह तनकी संख्या 3 और 4 पर निर्णय लेने से पहले उक्त आवेदन पर विचार करे। उच्च न्यायालय ने कहा है कि मुकदमे में प्रतिवादियों ने उनके मुकदमे पर रोक लगाने के लिए सी. पी. सी. की धारा 10 सपठित धारा 151 के तहत दायर आवेदन के जवाब में आपत्ति दर्ज करने के लिए समय मांगा था। इसके बाद मुकदमे को आवेदन पर विचार करने के लिए कई तारीखों पर सूचीबद्ध किया गया था, लेकिन अंत में, पक्षों के वकील को सुनने के बाद, विद्वान अतिरिक्त सिटी सिविल न्यायाधीश ने तनकी संख्या 3 और 4 को निर्णित करते हुये वाद को खारिज कर दिया और धारा 10 सी. पी. सी. के तहत आवेदन पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया था। यह विद्वान अतिरिक्त सिटी सिविल जज पर

तनकी संख्या 3 और 4 को निर्णित करने से पहले धारा 10 सीपीसी के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र पर विचार करना अनिवार्य था। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि विद्वान अतिरिक्त सिटी सिविल जज द्वारा वादी के प्रार्थना पत्र को निर्णित ना करने में अपनाई गई प्रक्रिया और तनकी संख्या 3 और 4 को निर्णित करने की कार्यवाही पूर्णरूप से अवैध थी। इन निष्कर्षों पर अतिरिक्त सिटी सिविल न्यायाधीश का निर्णय और डिक्री अपास्त कर दिया गया और प्रकरण को अतिरिक्त सिटी सिविल न्यायाधीश को वादी द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 10 सपठित 151 सीपीसी को प्राथमिकता के आधार पर निस्तारित करने के निर्देश के साथ पुनः प्रेषित किया गया।

4. हमने पक्षों के लिए विद्वान वकील को सुना है और अभिलेख पर पर विचार किया है। हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कानून में पूरी तरह से गलत है और इसे अपास्त किया जाना चाहिए। एक वाद की अन्वीक्षा में कार्यवाहियां सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार की जानी चाहिए। सी. पी. सी. की धारा 10 में कोई संदेह नहीं है कि कोई भी अदालत ऐसे किसी भी मुकदमे की सुनवाई के साथ आगे नहीं बढ़ेगी जिसमें विवाद का मामला सीधे और पर्याप्त रूप से एक विशेष रूप से स्थापित मुकदमे में उन्ही पक्षों के बीच या पक्षों के बीच, जिनके तहत वे या उनमें से कोई भी उसी स्वामित्व के तहत मुकदमा करने का दावा करते हैं, जहां ऐसा मुकदमा उसी या भारत के किसी अन्य न्यायालय में लंबित है, जिसे दावा की गई राहत देने की अधिकारिता है। हालाँकि, धारा 10 सी. पी. सी. के तहत एक आवेदन दायर करने से किसी भी तरह से मामले की योग्यता की जांच करने की अदालत की शक्ति पर प्रतिबंध नहीं लगता है। इस धारा का उद्देश्य समवर्ती अधिकारिता वाले न्यायालयों को एक ही मुद्दे के संबंध में दो समानांतर मुकदमों की एक साथ सुनवाई करने से रोकना है। यह धारा केवल प्रक्रिया का एक नियम

अधिनियमित करती है और इसके उल्लंघन में पारित डिक्री एक अमान्य नहीं है। यह किसी वादी के लिए नहीं है कि वह अदालत को निर्देश दे कि कार्यवाही कैसे की जानी चाहिए, यह अदालत को तय करना है कि मामले के शीघ्र निपटारे के लिए सबसे अच्छा तरीका क्या होगा। किसी दिये गये मामले में कार्यवाही की बहुलता और पक्षों के उत्पीड़न से बचने के लिए बाद के मुकदमे की कार्यवाही पर रोक लगाना आवश्यक हो सकता है। हालांकि, जहां बाद में दायर किये गये मुकदमे का फैसला बिना सबूत लिए विशुद्ध रूप से कानूनी बिंदुओं पर किया जा सकता है, न्यायालय के लिए यह हमेशा खुला रहता है कि वह प्रासंगिक मुद्दों पर निर्णय करे और मुकदमे को लंबित न रखे जो एक अप्रत्यक्ष उद्देश्य के साथ शुरू किया गया है और दूसरे पक्ष को परेशान करने के लिए है।

5. वर्तमान मामले के तथ्य खुद के लिए बोलते हैं। प्रश्नगत समझौते को अपीलकर्ताओं संख्या 6 से 10 (मूल मालिकों) दिनांक 5.12.1974 को जी. गोपालकृष्णन (प्रतिवादी संख्या 1) के पक्ष में निष्पादित किया गया था। उन्होंने खुद अनुबंध को रद्द करने और भुगतान की गई अग्रिम राशि की वापसी का दावा करते हुए एक कानूनी नोटिस जारी किया। इसके बाद 7.11.1977 को उन्होंने अपने द्वारा भुगतान की गई अग्रिम राशि की वसूली के लिए एक मुकदमा दायर किया। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उसने अपने पक्ष में संपत्ति की बिक्री विलेख के निष्पादन के अनुबंध के तहत अपना अधिकार छोड़ दिया था। काफी समय के बाद उन्होंने संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया जिसमें वाद को बिक्री के समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए एक में बदलने की मांग की गई थी, लेकिन उक्त आवेदन को निचली अदालत ने 3.12.1984 को खारिज कर दिया था क्योंकि यह परिसीमा द्वारा वर्जित था। उक्त आदेश के खिलाफ प्रस्तुत संशोधन को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और इसलिए निचली अदालत का यह निष्कर्ष कि बिक्री के समझौते के

विनिर्दिष्ट पालना की मांग करने वाली राहत समय की पाबंदी बन गई थी, अंतिम रूप ले लिया। राशि की वसूली के लिए मुकदमा निचली अदालत द्वारा 24.7.1985 को तय किया गया था, लेकिन प्रतिवादी नं. 1 द्वारा कानूनी नोटिस की लागत के लिये 125 रुपये अतिरिक्त राशि की मांग करने और उसके बाद बढे हुये दावे पर 12.50 रुपये की अपेक्षित अतिरिक्त अदालती फीस का भुगतान न करने की बहुत ही चतुर युक्ति के कारण, उच्च न्यायालय ने उनके द्वारा दायर एक संशोधन में राशि की वापसी के लिए डिक्री को रद्द कर दिया और वाद को शिकायत को खारिज कर दिया। वर्तमान अपील को जन्म देने वाला वाद प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा 2.4.88 को दायर किया गया था। जिसमें उन्होंने फिर से दिनांक 5.12.74 को विक्रय विलेख समझौते के विनिर्दिष्ट पालना की मांग की। निचली अदालत की राय थी कि वर्तमान मुकदमा लगभग 14 साल बाद दायर किया गया था। यहां तक कि पहले के मुकदमे (ओएस नंबर 801/1977) में भी प्रतिवादी नं. 1 जिसमें वह बिक्री के समझौते के विनिर्दिष्ट पालना के लिए अपने मुकदमे को एक में परिवर्तित करना चाहता था, उसे खारिज कर दिया गया था और एक निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि विनिर्दिष्ट पालना के लिए राहत पहले से ही समयबद्ध हो गई थी और इस निष्कर्ष की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा संशोधन में की गई थी। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 54 में अनुबंध के विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर करने के लिए तीन साल की सीमा का प्रावधान है। 3 साल की इस अवधि की गणना पालना के लिए निर्धारित तिथि से की जानी चाहिए, या यदि ऐसी कोई तिथि निर्धारित नहीं है, जब वादी को नोटिस है कि पालना से इनकार कर दिया गया है। अपीलार्थी संख्या 6 से 10 (संपत्ति के मूल मालिकों) ने प्रतिवादी नं. 1 द्वारा समझौते की विनिर्दिष्ट पालना के लिये संशोधन के लिए दायर पहले के मुकदमे में प्रार्थना पत्र को परिसीमा के आधार पर विरोध किया था और उनकी याचिका स्वीकार कर ली गई थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वर्तमान मुकदमा दायर

करने से बहुत पहले प्रतिवादी नं. 1 को इस तथ्य का ध्यान था कि मूल मालिक उसके पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए तैयार नहीं थे। मूल मालिक (अपीलार्थी संख्या 6 से 10) अपीलकर्ता संख्या 1 से 5 के पक्ष में विवादग्रस्त संपत्ति दिनांक 18.4.1985 को न्यायालय द्वारा संशोधन का प्रार्थना पत्र इस निष्कर्ष पर खारिज करने के बाद बेच दी कि विनिर्दिष्ट पालना की राहत परिसीमा द्वारा वर्जित हो गया था। इन तथ्यों पर कोई अन्य निष्कर्ष संभव नहीं था और निचली अदालत यह अभिनिर्धारित करने में पूरी तरह से उचित थी कि मुकदमा (ओएस नं 1629/1988) को परिसीमा द्वारा प्रतिबंधित था।

6. विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 16 (सी) में कहा गया है कि किसी अनुबंध के विनिर्दिष्ट पालना को उस व्यक्ति के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता है जो यह साबित करने में विफल रहता है कि उसने अनुबंध की आवश्यक शर्तों का पालन किया है या हमेशा तैयार रहा है और उसके द्वारा किए जाने वाले अनुबंध की आवश्यक शर्तों का पालन करने के लिए तैयार है, उन शर्तों के अलावा जिनके पालना को प्रतिवादी द्वारा रोका या माफ कर दिया गया है। इस उप-धारा के स्पष्टीकरण ॥ में प्रावधान है कि वादी अनुबंध के वास्तविक निर्माण के अनुसार उसके पालना, या तैयारी और प्रदर्शन करने की इच्छा को करनी चाहिए। इस प्रावधान की आवश्यकता यह है कि वादी को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह अनुबंध की आवश्यक शर्तों का पालन करने के लिए हमेशा तैयार और इच्छुक रहा है। इसलिए न केवल ऐसा वाद में अभिकथन होना चाहिए लेकिन आसपास की परिस्थितियों से यह भी संकेत मिलते हैं कि इच्छा और तैयारी अनुबंध की तारीख से लेकर वाद की सुनवाई की तारीख तक जारी रहती है। यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि विनिर्दिष्ट पालना का न्यायसंगत उपचार प्रदर्शन उन अभिवचनों के आधार पर नहीं किया जा सकता है जिसमें वादी की सीपीसी के फार्म 47 और 48 के संदर्भ में अपना अनुबंध

निष्पादितकरने की तत्परता और इच्छा का प्रमाण शामिल नहीं है। यहाँ प्रतिवादी संख्या 1 ने स्वयं अनुबंध को रद्द करने के लिए एक कानूनी नोटिस भेजा और उसके बाद ओएस नं. 801/1977 दिनांक 7/11/1977 को भुगतान किए गए अग्रिम की वापसी का दावा करते हुए प्रस्तुत की। वास्तव में राशि की वसूली के लिए मुकदमा निचली अदालत द्वारा 24.7.1985 को डिक्री किया गया था, लेकिन उसने खुद उस डिक्री के खिलाफ एक पुनरीक्षण को दायर किया, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा वाद की अस्वीकृति का आदेश पारित किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि प्रतिवादी नंबर 1 अनुबंध के अपने हिस्से का पालन करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं था और विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 16 के अधिदेश को देखते हुए विनिर्दिष्ट पालना के लिए कोई डिक्री उसके पक्ष में पारित नहीं की जा सकती। इसलिए, निचली अदालत ने उचित रूप से अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा दायर वाद रखरखाव पोषणीय नहीं था।

7. इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा पारित आदेश को खारिज करने की जो डिक्री पारित की गई वह पूरी तरह से सही थी और उच्च न्यायालय ने मामले के इन पहलुओं पर ध्यान नहीं देकर और प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उठाये गये विवाद को स्वीकार करने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की, जो प्रक्रिया के मामले से संबंधित है न कि सार के, कि मुकदमे पर रोक लगाने की मांग करते हुये धारा 10 सी. पी. सी. के तहत उसके द्वारा दायर आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया था।

तदनुसार अपील को संपूर्ण खर्च के साथ स्वीकार किया जाता है और उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश दिनांक 17.3.1997 को अपास्त किया जाता है। निचली अदालत द्वारा पारित मुकदमे को खारिज करने की डिक्री की पुष्टि की जाती है।

एसकेएस.

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता नृपेन्द्र सिनसिनवार द्वारा किया गया है।

**अस्वीकरण:** यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।